उग्रादित्याचार्य का रसायन के क्षेत्र में योगदान

डा० नंदलाल जैन

रसायन के उद्भव एवं विकास का श्रेय, रसोईघर, रसशाला और रसायनशाला को दिया जा सकता है। रसोईघरों का इतिहास अग्नि के आविर्भाव के साथ प्रारंभ हुआ और यह अतिप्राचीन है। अग्नि का योग खाद्य पदार्थों को सुपाच्य और रसायन बनाता है। भोजन एवं जलवायु के असन्तुलन से होने वाली विकृतियों को दूर कर रसशालायें मानव को आयुष्य-ज्ञानी और भैषज-ज्ञानी के रूप में स्वस्थ एवं दीर्घ जीवन प्रदान करती हैं। रसायनशालायें जीवन को भौतिक सुख-सुविधाओं से सज्जित कर समृद्धिमय बनाती हैं। वस्तुतः आधुनिक रसायन का विकास रसशालाओं से ही हुआ है। प्रारंभ में इनमें प्राकृतिक वनस्पति एवं खनिज पदार्थों तथा पारद आदि तत्वों व यौगिकों से स्वस्थ्यकर यौगिक बनाये जाते रहे हैं। यही नहीं, कालान्तर में पारद एवं अन्य धातुओं को स्वर्ण में परिणत करने के लिये पारस-पत्थर या प्रक्रियाओं की खोज तथा इह जीवन में अमरत्व प्राप्त करने की लालसा की पूर्ति इनके अन्यतम उद्देश्य रहे हैं। यद्यपि मानव इन दोनों ही उद्देश्यों को पाने में असमर्थ रहा और आज भी इस दिशा में प्रयत्नशील है, लेकिन इस प्रयत्न में पूर्व और पश्चिम के वैज्ञानिकों ने अनेक प्रकार की भौतिक एवं रासायनिक विधियों का विकास किया। इस विकास में पूज्यपाद, समन्तभद्र, उग्रादित्याचार्य एवं अनेक जैनाचार्यों का महत्वपूर्ण योगदान है।

डा० रे[1] ने भारतीय रसायन के इतिहास को प्रागैतिहासिक (ई० पू० ४०००-१५००), आयुर्वेदिक एवं वैदिक (१५०० ई० पू० से ८०० ई०), संक्रमण एवं तांत्रिक (८००-१३०० ई०) एवं औषध-रसायन (१३००-१६०० ई०) युगों के नाम से चार चरणों में विभाजित किया है। सिन्धु घाटी सभ्यता के युग में अनेक प्राकृतिक खनिजों एवं ताम्र, स्वर्ण, रजत एवं कांस्य धातुओं तथा कुछ कलाओं का पता चलता है जिनमें रासायनिक क्रियाओं का उपयोग होता है। वैदिक युग में छह धातुओं तथा अनेक सुराओं एवं पेयों का उल्लेख मिलता है। अथर्ववेद में तो देववाद एवं औषधशास्त्र के माध्यम से रसायन के अनेक प्रारंभिक और कुछ विकसित रूप मिलते हैं। इसमें रसायन से संबंधित विष विद्या, रसायन विद्या एवं वाजीकरण विद्या के अनेक उल्लेख हैं। प्राचीन जैन ग्रन्थ उत्तराध्ययन[2] एवं दशवैकालिक[3] से ज्ञात होता है कि अनेक औषधों और धूम्रों का प्रयोग चल पड़ा था। इसी युग में भारत में भौतिक एवं आध्यात्मिक जगत से संबंधित अनेक

---

१. रे, पी०; **हिस्ट्री आव केमिस्ट्री इन एन्सियन्ट एण्ड मेडीवल इन्डिया**, इण्डियन केमिकल सोसायटी, कलकत्ता, १९५६, पृ० ११.

२. साध्वी, चंदना (संपा०); **उत्तराध्ययन सूत्र**, सन्मति ज्ञानपीठ आगरा, पु० ७२, पृ०, १४८।

३. आ० शय्यंभव; **दसवेआलिय** (सं० मुनि नथमल), जैन विश्वभारती, लाडनूं, १९७४, पृ० ७०, ८७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धान्त पल्लवित हो रहे थे। इस युग के चिकित्सीय या रासायनिक विवरण का कोई महत्वपूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, फिर भी अन्य विषयों के ग्रन्थों में उपलब्ध स्फुट विवरण ही हमें इस दिशा में कुछ आभास देते हैं। उदाहरणार्थ आचारांग,[१] स्थानांग[२] व निशीथचूर्णी[३] में भोजन के चार घटकों का उल्लेख आता है। दशवैकालिक[४] में छह लवण, आर्सेनिक एवं पारद के लवणों को जलाकर बनने वाला शिरोरोगनाशी धूम्र तथा आशीविष एवं तालपुट विषों का उल्लेख है। स्थानांग[५] में चिकित्सा के चार अंगों, भोजन एवं विषपरिणामों, नौ विकृतियों (दही, घी आदि), सात धातु गोलकों (हीरा एवं मणि भी उस समय धातु माने जाते थे) एवं छह शस्त्रों का उल्लेख है। इनमें अग्नि (विस्फोटक), विष, लवण, स्नेह, अम्ल और क्षार-आधारित शस्त्र हैं जिनमें रासायनिक प्रक्रियायें समाहित हैं। इसमें आयुर्वेद के अष्टांगों के नाम भी आये हैं जिनमें जंगोली (विष), रसायन एवं क्षारतंत्र रसायन के ही अंग हैं। रामायण, महाभारत व पाणिनि के साहित्य[६] में भी ऐसे ही अनेक स्फुट विवरण पाये जाते हैं। ये सभी उद्धरण लगभग ई० पू० ५०० के हैं। इनसे पता चलता है कि शिक्षा के क्षेत्र में सामान्यतः औषध एवं रसायन विद्या को स्थान नहीं मिल पाया था। इसके विपर्यास में, जैन तीर्थंकर महावीर के द्वादशांगी उपदेशों में दृष्टिवाद[७] नामक बारहवें अंग के पूर्वगत नामक खंड में 'प्राणवाद' नामक एक स्वतंत्र क्षेत्र या पूर्व माना गया था जो औषध और रसायन का वर्णन करता था। उत्तरवर्ती काल में रसायन के अनेक रूप शिक्षा की बहत्तर कलाओं (हिरण्यपाक, सुवर्णपाक, सजीव, निर्जीव, चर्म लक्षण, मणि लक्षण, अन्न-पान विधि, शोधन-पृथक्करण विधि आदि) में जैनाचार्यों[८] ने सम्मिलित किये। यही नहीं, जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति[९] में तो स्त्रियों की ६४ कलाओं में भी रसायन और वैद्यक कला को समाहित किया गया है।

कौटिल्य के ईसापूर्व चौथी सदी के अर्थशास्त्र में षट्-धातुप्राप्ति, मणि परीक्षण, आसव एवं मदिरायें, रासायनिक युद्धकला, विषविद्या एवं अम्ल, क्षार तथा अनेक लवणों (हरिताल, हिंगुल आदि) का विवरण मिलता है एवं तत्कालिक रसायन विद्या की स्थिति का पता चलता है।[१०] इस विवरण में वैज्ञानिकता का पर्याप्त अंश प्रतीत होता है, फिर भी इसमें कलात्मकता

१. ऋषि अमोलक; **आचारांग सूत्र** (अनुवादक), अमोल जैन ज्ञानालय, धूलिया, १९६०; पृ० १६२
२. शास्त्री, हीरालाल (अनु०); **स्थानांग सूत्र**, आगम प्र० समिति, व्यावर, १९८१, पृ० २९४.
३. सेन, मधु; **ए कल्चरल स्टडी ऑव निशीथचूर्णि**, पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बाराणसी, १९७५, पृ०, १२४.
४. देखिये, दसवेयालिय पृ० ४४, ४५, ३८१, ४३२.
५. देखिये, स्थानाङ्ग पृ० ३९२, ५६२-६३, ६६९, ४०७, ९१६, ६३६.
६. विद्यालंकार, अत्रिदेव; **आयुर्वेद का बृहत् इतिहास**, सूचना, विभाग, लखनऊ, १९६०, पृ० ७६-९१.
७. आचार्य, पूज्यपाद; **सर्वार्थसिद्धि**, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, १९७१, पृ० ८५.
८. जैन, जे० सी० तथा मेहता, एम० एल०; **जैन साहित्य का बृहत् इतिहास-२**, पार्श्वनाथ विद्याश्रम, वाराणसी, १९६६; पृ० २७ एवं ११७.
९-१०. विद्यालंकार—पूर्वोक्त, पृ० १२९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अधिक प्रतीत होती है। उत्तराध्ययन में ३६ पृथ्वी-पदार्थों का उल्लेख है[1] इसके नामों का कौटिल्य से बहुत कम साम्य है। वर्गीकरण और नामकरण की विधि भी भिन्न है। पर इससे एक तथ्य प्रकट होता है कि पारे के लवणों का ज्ञान उन दिनों हो चुका था।

कौटिल्य के बाद चरक और सुश्रुत का समय आता है। इन औषध ग्रन्थों में पर्याप्त रासायनिक सामग्री मिलती है। यद्यपि इन ग्रन्थों के मूल लेखकों के समय के विषय में काफी मतभेद है, पर यह सामान्य मान्यता है कि 'चरक' और 'सुश्रुत' शब्द एक परंपरा को निरूपित करते हैं जो महावीर-युग तक मानी जाती है। परंतु इन ग्रन्थों के अनुशीलन से अधिकांश विद्वान्[2] यह मानते हैं कि ये ग्रन्थ ईसापूर्व दूसरी सदी में लिखे गये थे। इनका संस्कार भी किया गया है। इसीलिये इन ग्रन्थों में पर्याप्त विकसित रासायनिक जानकारी मिलती है। इनमें प्राकृतिक एवं पार्थिव खनिजों के १३३ नाम दिये हैं। इसमें छह धातु, पांच लवण, पांच खनिज, अम्ल एवं क्षार आदि के अतिरिक्त धातु-मारण एवं नौ प्रकार के स्रोतों से प्राप्त चौरासी प्रकार के किण्वित पेयों का नाम भी है। गंधक और पारद के साथ इन तत्वों के भी नाम बहुलता से पाये गये हैं।[3] यह साहित्य मुख्यतः आयुर्वेदिक है पर इसमें भूतविद्या और मंत्रविद्या का भी रोगशमन हेतु उल्लेख है। चूंकि औषध का अर्थ रस-धारक एवं रोगनिवारक है, अतः इसे रसायन कहा गया है। फलतः भारतीय रसायन का विकास आयुर्वेद के माध्यम से हुआ, यह स्पष्ट है। खनिजों के उपचार से धातुयें और उनके शोधन तथा उपचार से रंग-बिरंगे यौगिक-सम्मिश्र बनने से चामत्कारिता का भाव स्वाभाविक ही था इसके कारण रसायन को कीमियागिरी भी कहा जाने लगा।

उपरोक्त ग्रन्थों के बाद अगले चार-पांच सौ वर्षों तक पुनः कोई विशिष्ट साहित्य उपलब्ध नहीं होता। पर यहाँ भी कुन्दकुन्द का धार्मिक साहित्य हमें १००-२०० ई० के सामान्य रासायनिक ज्ञान की धारणा बनाने में सहायक है। जैन[4] ने बताया है कि कुन्दकुन्द-युग में परमाणुवाद, धातु क्रिया और शोधन, रस-विद्या, विष विद्या प्रचलित थी। वायु की ज्वलन क्रिया में अनिवार्यता, जल की शोधन क्षमता तथा अनेक पदार्थों की जल-अविलेयता तथा फिटकरी एवं उत्तापन द्वारा जलशोधन की क्रियाओं का विशेष उल्लेख है। जैनाचार्य समंतभद्र (चौथी-पांचवीं सदी) के सिद्धान्त रसायनकल्प, पुष्पायुर्वेद तथा अष्टांगसंग्रह का उल्लेख अनेक निर्देशों में आता है,[5] परन्तु ये ग्रन्थ पूर्णतः उपलब्ध नहीं हैं। इनके विषय इनके उल्लेखों से अनुमित किये जा सकते हैं। पाँचवीं-छठवीं सदी के पूज्यपाद देवनन्दि के कल्याणकारक, शालक्यतंत्र और वैद्यामृत नामक ग्रन्थों का उल्लेख उग्रादित्याचार्य, मुम्मट मुनि एवं वसवराज ने किया है, लेकिन ये ग्रन्थ भी उपलब्ध नहीं हैं। उत्तरवर्ती सदी के सिद्ध नागार्जुन, जो पूज्यपाद के भांजे थे, ने भी अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। ये नागार्जुन वलभी वाचनाकार नागार्जुन के काफी बाद में हुए हैं। बौद्धों में भी नागार्जुन हुए हैं।

१. उत्तराध्ययनसूत्र, पृ० ३९०-९१.
२. उपाध्याय, बलदेव; **संस्कृत शास्त्रों का इतिहास**, शारदा मंदिर, काशी, १९६९, पृ० ११.
३.(अ) सत्यप्रकाश; **वैज्ञानिक विकास की भारतीय परंपरा**, बि० रा० पटना, १९५४, पृ० २४३;
(ब) आचारांग सूत्र, पृ० ६२
४. जैन, एन० एल०; सायंटिफिक कन्टेन्ट्स आफ अष्टपाहुड; संस्कृत वि० संगोष्ठी, काशी, १९८१.
५. उग्रादित्याचार्य; **कल्याणकारक**, सखाराम, नेमचन्द्र ग्रन्थमाला, शोलापुर, १९४०; भूमिका.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनेक विद्वानों के एतत् संबंधी अनुशीलनों से लगता है कि मूलतः किसी प्रसिद्ध नागार्जुन की उपाधि अनेक उत्तरवर्ती आचार्यों ने ग्रहण की, जिससे उनकी प्रामाणिकता पुष्ट हो। प्रो० रे और सत्यप्रकाश के मत के विपरीत विद्यालंकार[1] का मत है कि इसी युग में काश्यपसंहिता और अष्टांगहृदय लिखे गये।

पूर्वोक्त प्राचीन साहित्य के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि उस युग में भारत में पारद, लवण, गंधक एवं उसके अनेक यौगिक प्रयोग में आते थे और उनका रसायनशास्त्र भी विकसित हो चुका था। पारद से सोना बनाने की विधियों का भी पर्याप्त उल्लेख इस साहित्य में मिलता है। यद्यपि पारद एवं उसके यौगिकों का चिकित्सीय कार्यों में प्रयोग होने की बात देखने में नहीं आई, यद्यपि कुछ स्थलों पर इनके बाह्य-प्रयोगों का उल्लेख अवश्य मिलता है।

अनेक विद्वानों के आलोडनों से प्रतीत होता है कि पारद और गंधक को विभिन्न रूपों एवं योगों को चिकित्सा के क्षेत्र में प्रतिष्ठित करने का श्रेय बौद्ध सिद्धों एवं नाथ सम्प्रदाय, को दिया जाना चाहिये।[2] यहाँ भी नागार्जुन का नाम परेशानी में डालता है। इसका कारण यह है कि ये दोनों ही सम्प्रदाय लगभग नवीं शताब्दी के प्रारंभ में प्रतिष्ठित हुए हैं। इनमें नागार्जुन को कहीं छठवाँ तो कहीं सोलहवाँ सिद्ध बताया गया है। ये पारसनाथी शाखा के रसेश्वर सिद्ध माने गये हैं। यदि उन्हें रस चिकित्सा का मूल बिन्दु माना जाव, तो इनके इस समय के आधार पर अनेक विवरण संशोधनीय हो जावेंगे। फलतः यह मानना अधिक तर्कसंगत होगा कि उक्त सम्प्रदायों ने इनकी रससंबंधी प्रतिष्ठा को देखकर इन्हे अपने महापुरुषों में से एक सिद्ध मान लिया हो। इन्हें सातवीं सदी का मानकर ही भारतीय रसायन के इतिहास में संगतता आ सकेगी। रसायनज्ञ नागार्जुन के समय रस, सूत या पारद और उसके यौगिकों का आयुष्मानी औषध के रूप में पर्याप्त उपयोग होने लगा था और उसने पारद-शोधन और उसके यौगिकों के बनाने में काम आनेवाली अनेक प्रक्रियाओं का विकास किया था। ये दक्षिण के रहने वाले थे, आंध्र प्रदेश में इनके नाम पर एक विश्वविद्यालय स्थापित किया गया है। उत्तरवर्ती रस-शास्त्रज्ञों ने भी इनका अनुसरण कर नये-नये यौगिक बनाये एवं रस चिकित्सा को बढ़ाया। डा० गुण[3] के अनुसार, जैनाचार्यों ने भी रसशास्त्र, निघंटु एवं औषध-विज्ञान पर बहुत काम किया है। नागार्जुन से लगभग १५० वर्ष बाद ही वर्तमान उड़ीसा के त्रिकलिंग क्षेत्र मे उग्रादित्य नामक जैनाचार्य हुए हैं। इन्होंने प्राचीन आचार्यों के ग्रन्थों का सांगापांग अध्ययन किया और अपने अध्ययन तथा अनुभवों को कल्याणकारक नामक ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत किया। यद्यपि यह मुख्यतः आयुर्वेदिक ग्रन्थ है, फिर भी इसमें नवीं सदी के ज्ञान-विज्ञान का अच्छा विवरण मिलता है। यही नहीं, इस ग्रन्थ की कुछ विशेषतायें हैं। यह पूर्वी भारत में आयुर्वेद पर लिखा गया अपने युग का प्रथम ग्रन्थ है। इसके पूर्व के आयुर्वेद ग्रन्थ अधिकांश दक्षिण (मुख्यतः जैन ग्रन्थ) और उत्तरी सीमान्त के आचार्यों के हैं। फलतः इस ग्रन्थ से यह पता चलता है कि भारत के विभिन्न क्षेत्रों के विद्वानों में ज्ञान के

---

१. विद्यालंकार, पूर्वोक्त, पृ० २१७.

२. वही, पृ० ३४५-४२१.

३. शाह, ए० पी०; जैन साहित्य का बृहत् इतिहास-५, पा० विद्याश्रम, काशी, १९६९, पृ० २२६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदान-प्रदान या संचरण की क्या स्थिति थी। यह ग्रन्थ नागार्जुनोत्तर युग में नवीं सदी का अन्यतम ग्रन्थ है जो उत्तरवर्ती प्रगति के लिये संपर्क-सूत्र का काम करता है। उग्रादित्य ने अपने ग्रन्थ में पात्रकेसरी, सिद्धसेन, समन्तभद्र, पूज्यपाद, दशरथ, मेघनाद और सिंहसेन नामक अन्य पूर्ववर्ती आचार्यों का उल्लेख किया है। इनके उत्तरवर्ती जैन विद्वानों में गुम्मटदेव मुनि, गुणाकर सूरि, पंडित आशाधर, ठक्कुर फेरू, हितरुचि आदि हैं जिन्होंने अपने अनुभवपूर्ण ग्रन्थों द्वारा सोलहवीं सदी तक उग्रादित्य के ज्ञान को आगे बढ़ाया है। यह वास्तव में अचरज की बात है कि ऐसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ के विषय में **प्रो० रे, सत्यप्रकाश** और **उपाध्याय** के समान विद्वानों ने अपने विद्याओं के विकास-इतिहास विषयक प्रकरणों में मौन रखा है। इस दृष्टि से **विद्यालंकार** का विवरण प्रशंसनीय है। **शाह** ने भी इनका उल्लेख किया है।

उग्रादित्य का परिचय

'कल्याणकारक' में उग्रादित्य ने अपना परिचय पृथक् से नहीं दिया गया है पर ग्रन्थ में प्राप्त स्फुट विवरणों से उनके विषय में पूर्ण तो नहीं, पर कुछ जानकारी मिलती है। नृपतुंग वल्लभेन्दु की राजसभा के उल्लेख से यह अनुमान लगता है कि वे नवीं सदी के पूर्वार्द्ध में अवश्य ही रहे होंगे क्योंकि राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष प्रथम के नृपतुंग कहे जाने का अनेक विद्वानों ने समर्थन किया है। इनका काल ८००-८७७ ई० माना जाता है। ये आदिपुराण-रचयिता जिनसेन (७८३ ई०) के शिष्य थे। संभवतः गणितज्ञ महावीराचार्य (८५० ई०), धवलाकार वीरसेनाचार्य (८१५ ई०) और शाकटायन इनके समकालीन हैं। प्रो० सालेतोर और नरसिंहाचार्य का भी यही मत है। इस आधार पर **शाह** एवं **विद्यालंकार**[1] का यह कथन समीचीन नहीं प्रतीत होता कि उग्रादित्य का समय ११-१२वीं सदी से पूर्व नहीं हो सकता। नागार्जुन का 'रसरत्नाकर' पर्याप्त पूर्व में प्रचार पा चुका था और उग्रादित्य ने अपनी शैली में उन्हीं रक्ष-विषयों का संक्षिप्त वर्णन किया है।

उग्रादित्याचार्य के जन्मस्थान, माता-पिता एवं पारिवारिक जीवन के विषय में अभी तक कोई विशिष्ट जानकारी नहीं मिल सकी है। तथापि, इनके ग्रन्थ के अनुसार, उनके गुरु श्रीनंदि थे और उन्होंने अपने ग्रन्थ का निर्माण त्रिकलिंग देश में स्थित रामगिरि पर्वतस्थ जिन मन्दिर में किया था। यह अनेक पूर्वाचार्यों के ग्रन्थों के संक्षेपण और अनुभवों के आधार पर लिखा गया है।

कल्याणकारक का परिचय

यह ग्रन्थ सखाराम नेमचन्द्र ग्रन्थमाला, शोलापुर से १९४० ई० में प्रकाशित हुआ है। इसकी भूमिका प्रसिद्ध आयुर्वेदज्ञ डा० गुणे ने लिखी है जिसमें जैनाचार्यों द्वारा आयुर्वेद एवं रसशास्त्र के क्षेत्र में किये गये योगदान का समीक्षात्मक इतिहास दिया गया है। इसी के आधार पर अन्य उत्तरवर्ती विद्वानों ने एतद्विषयक उल्लेख दिये हैं। यह एकमात्र ग्रन्थ ही उग्रादित्य की कीर्ति को अमरत्व प्रदान करता है।

इस ग्रन्थ में २५ परिच्छेद और २ परिशिष्टाध्याय हैं। मुख्यतः यह आयुर्वेद ग्रन्थ है और इसमें चिकित्साशास्त्र के आठों अंगों का वर्णन है। इसमें रासायनिक महत्त्व की अनेक बातें हैं।

---

१. विद्यालंकार, पूर्वोक्त, ९ पृ० ३३४-४२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सबसे महत्त्वपूर्ण तो यही है कि इसमें अनेक उपयोगी पदार्थों व औषधों के गुणों का निरीक्षण और परीक्षण दिया गया है। औषधों को भी समुचित मात्रा में लेने का उल्लेख है। इस दृष्टि से इसके धान्यादि—गुणागुण विचार (परिच्छेद ४), द्रव-द्रव्याधिकार (परिच्छेद ५), रसायनाधिकार (परिच्छेद ६), विषरोगाधिकार (परिच्छेद १९) एवं रस-रसायनाधिकार (परिच्छेद २४) नामक पाँच अध्याय महत्त्वपूर्ण हैं। इसके वर्णनानुसार यह स्पष्ट होता है कि उग्रादित्य के युग में विभिन्न वनस्पतियों, प्राकृतिक खनिजों व पदार्थों के साथ-साथ रसशाला में निर्मित पदार्थों का अध्ययन किया जाने लगा था।

इस ग्रन्थ की तीन विशेतायें महत्त्वपूर्ण हैं :

(i) इसमें केवल ऐसी औषधों/कल्पों का वर्णन है जो वनस्पति या खनिज जगत या उसके संसाधन से प्राप्त हो सकती हैं।

(ii) ग्रन्थ के अन्तिम हिताहिताध्याय में जैनमत के अनुसार मद्य, मांस और मधु का उपयोग अनुचित बताया गया है। इसमें इसके समर्थक पूर्वाचार्यों के मतों का खण्डन भी किया गया है। इन तीनों का त्याग आज भी जैनों के आठ मूलगुणों[1] में माना जाता है। इसीलिए आचार्य ने इन्हें अपने औषधों के निर्माण/अनुपान में प्रयुक्त नहीं किया है और इनकी अभक्ष्यता पर पर्याप्त तर्कसंगत विवेचन किया है।[2] इनसे पूर्व के अन्य जैन आयुर्वेदज्ञों की भी यही परम्परा रही है। मद्य एवं मांसाहार के विरुद्ध तो इस युग में भी काफी वैज्ञानिक तथ्य ज्ञात हुए हैं और अनेक राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के माध्यम से अब इनका प्रचलन कम होने के आसार दिखने लगे हैं।

(iii) इसका आयुर्वेदिक विवरण भी जैनेतर ग्रन्थों से भिन्न है, यद्यपि यह त्रिदोषों पर आधारित है। वर्णनक्रम भी भिन्न है। रसायनाधिकार पहले है और रस-रसायनाधिकार अन्त में है।

रासायनिक विवरण : (अ) जल के गुण[3]

जीवन में जल का महत्त्व स्पष्ट है, इसलिए उसके रसायन को भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसे पंच भूतों में एक माना गया है। विभिन्न स्रोतों से प्राप्त जल का विवरण निम्न है :

(i) कठोर, काली, पथरीली मिट्टी एवं तृणमय स्थान का जल खारा/खट्टा होता है।
(ii) कोमल, सफेद, चिकनी मिट्टी एवं तृणमय स्थान का जल स्वच्छ मधुर होता है।
(iii) कठोर, रुक्ष, भूरी मिट्टी एवं ठूँठदार वृक्षों के स्थान का जल कटु होता है।
(iv) वर्षा का जल अमृत के समान होता है। उबला जल औषध-गुणी होता है।

हमें नीरस, निर्गंध, स्वच्छ एवं शीतल जल पीना चाहिये। भूतलस्थ जल में स्पर्शगत, रसगत एवं पाकगत दोष होते हैं, अतः उसे शुद्ध कर ही पीना चाहिये। उसके शुद्ध करने के लिए निम्न उपाय हैं :

---

१. पंडित, आशाधर; **सागारधर्मामृत**, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बंबई १९४० पृ० ४०.
२. कल्याणकारक, १८ पृ० ७१४.
३. वही, पृ० ६९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(अ) धूप में रखना (ब) रात को चाँदनी में रखना (स) अग्नि में तपाना (द) कपड़े से छानना (य) कतकफल या अलसी का तेल मिलाना। आधुनिक व्याख्यानुसार, सभी विधियों से जल में विद्यमान विलेय लवणों का स्कंदन या अवक्षेपण होता है। अग्नि या धूप के योग से कीटाणुनाश भी होता है। ग्रन्थ में विभिन्न प्रकार के जलों के गुण-दोष बताये गये हैं पर इनके कारण और निवारण की प्रक्रिया की व्याख्या नहीं दी गई है। वस्तुतः जल के संरचनात्मक एवं शोधन-रसायन का विकास उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में हो सका।

(ब) अन्य पदार्थों के गुण :

जल के अतिरिक्त अनेक ठोस खाद्यों, शाक-भाजी एवं तरल पेयों का भी ग्रन्थ में गुण विवरण दिया गया है। इनमें धान, दालें, तिल, गेहूँ और जौ आदि के त्रिदोषाधारित विवरण दिये गये हैं। विभिन्न प्रकार के जमींकदों को पुष्टिकर एवं विषनाशक बताया गया है।[1] पालक, बथुआ आदि पित्तविकार या अम्लता को दूर करते हैं। परवल अम्लता, क्षारता, कृमि एवं चर्मरोगों को दूर करती है। विभिन्न प्रकार के मसाले वात एवं कफ नाशक हैं (संभवतः उभयधर्मी ऐल्केलाइटों के कारण)। अदरख, कालीमिर्च, पीपरामूल, प्याज, लहसुन अम्लता एवं क्षारता को नाशकर जठराग्नि या पाचन शक्ति को बढ़ाते हैं। ये उष्ण अर्थात् उष्मादायी होते हैं जिनसे विकार पचते हैं। विभिन्न खट्टे फल (उभयधर्मी अम्लों के कारण) वातनाशक एवं मलशोधक होते हैं। किशमिश, केला, महुआ, सिंघाड़ा एवं नरियल गरिष्ठ एवं कफ-बर्धी होते हैं। (संभवतः किशमिश में ये गुण नहीं पाये जाते हैं ?)।

दूध[2] आठ प्रकार के प्राणि-स्रोतों से प्राप्त होता है। यह विभिन्न प्रकार के वनस्पतिज खाद्य-पदार्थों के जीवरासायनिक परिपाक का परिणाम है। यह हितकर और पुष्टिकर होता है। धारोष्ण दूध अमृत है, थकावट दूर करता है। गरम दूध एवं उष्ण-शीतलित (आज का पेस्चुराइज्ड) दूध अनेक (कृमि) रोगों में लाभकारी है। यह आँख की रोशनी (विटामिन ए के कारण) बनाता है और आयु-वर्धक (खनिजों के कारण) है। दूध से उत्पन्न दही अम्लीय होता है, पाचनशक्ति बढ़ाता है। यह विषहर, वृष्य एवं मलावरोधक है। मट्ठा खट्टा एवं शीघ्र पचनशील है। यह भी पाचनशक्ति बढ़ाता है और मल-मूत्रशोधक है। मक्खन एवं घृत भी खट्टेमीठे रसायन हैं। इनमें शरीर के तेज, बल व आयुवर्धक पदार्थ होते हैं। इनमें भुंजे हुए मसालों से छौंके और बनाये भोज्य बलवर्धक होते हैं।

सिरका और कांजी खट्टी होती है और वातविकार (अम्लता) को दूर करती है। विभिन्न तेल केशवर्धक, तेजवर्धक एवं कृमिनाशक होते हैं। मूत्र भी दूध के समान आठ प्रकार के होते हैं। ये तीक्ष्ण, कड़ुए एवं उष्मादायी होते हैं। ये कृमिनाशक एवं अम्लता-क्षारता को दूर करते हैं। अनेक क्षारों में भी मूत्र के गुण होते हैं। इन मूत्रों का उपयोग औषध एवं अनुपान में किया जाता है।

---

१. कल्याणकारक, पृ० ५७.

२. वही, पृ० ७५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मद्य मानसिक विचार शक्ति, हेयोपादेय ज्ञान, सामान्य क्रियाक्षमता एवं विवेक को दूषित करता है। यह अनेक रोगों को उत्पन्न करता है और मनुष्य की गरिमा को हीन बनाता है।

भोजन के तीन प्रधान चरण होते हैं।[1] पहले चरण में स्निग्ध-मधुर (हलुआ-खीर आदि) खाने चाहिये। दूसरे चरण में खट्टे और नमकीन पदार्थ खाने चाहिये। तीसरे चरण में द्रव पदार्थ लेने चाहिये। प्रत्येक भोजन में शाक-भाजी, कांजी और दूध अवश्य लेना चाहिये। भोजन के पाक से रस, रुधिर, मांस, भेद, अस्थि, मज्जा और वीर्य नामक सात धातुयें शरीर में निर्मित होती हैं।

इन पदार्थों के अतिरिक्त अनेक प्रकार की वनस्पतियों के गुणों का भी वर्णन किया गया है। यह स्पष्ट है कि यह वर्णन आचार्यों की तीक्ष्ण निरीक्षण शक्ति एवं अनुभवसामर्थ्य का सङ्केतक है। इसमें सैद्धान्तिक व्याख्या समाहित नहीं है।

(स) खनिज एवं अन्य रासायनिक का विवरण

ग्रन्थ में उस समय औषधियों के रूप में प्रयुक्त आने वाले अनेक खनिजों एवं रासयनिक पदार्थों के नाम दिये गये हैं। इसके अन्तर्गत हरताल, नीलांजन, कसीस (फेरस सल्फेट), फिटकरी (ऐलम), गेरू (आयरन ऑक्साइड), पंचलवण, तूतिया (कापर सल्फेट), दीपांजन (काजल) मैनसिल (आर्सेनिक सल्फाइड), शिलाजीत (विटुमेंन), माक्षिक (पायराइट्स), वंसलोचन, स्फटिकमणि आदि पदार्थों का उल्लेख है। धातुओं में सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, सीसा एवं काँसे का नाम है। इनकी भस्मों का भी उल्लेख है। इसके अतिरिक्त, शंख, मोती, प्रवाल, पारद भस्मों का भी उल्लेख है। इनके बनाने की विधियाँ भी दी गई हैं। कपूर, बज्रक्षार एवं गन्धक के भी अनेक उपयोग दिये गये हैं। रेशमी कपड़े की भस्म को रक्तस्राव रोकने में उपयोगी बताया गया है।

क्षारीय पदार्थ तीन काम करते हैं—छेदन, भेदन और लेखन। ये वनस्पतियों की भस्मों को पानी में उबालकर प्राप्त किये जाते हैं। ये तनु (स्वल्प द्रव) और सान्द्र (अति द्रव) दोनों होते हैं। ये चिकने और सफेद होते हैं। आज की भाषा में मुख्यतः पोटैसियमकार्बोनेट (यवक्षार) के विलयन हैं। घावों को क्षारों से धोया जाता है जिससे वे पक न सकें। ये पूतिरोधी होते हैं। चिकित्सक को क्षार कर्म अवश्य जानना चाहिये। यह बताया गया है कि औषध के पन्द्रह कार्यों में से आधे से अधिक ऐसे होते हैं जिनमें रासायनिक प्रक्रियायें काम आती हैं।

(द) विष-वर्णन[2]

विष वे पदार्थ हैं जो शरीर के बाह्य या अन्तर्ग्रहण से कष्ट पहुँचावे, शरीरक्रिया में बाधक बने। विषों का वर्णन कौटिल्य एवं सुश्रुत ने किया है और विषज्ञ भिषक की आवश्यकता राजकुल को अनिवार्य बताई है। सुश्रुत के दो प्रकारों की तुलना में उग्रादित्य ने इन्हें तीन प्रकार का बताया है और उसके वर्गीकरण भी किये हैं—

---

१. कल्याणकारक, पृ० ५५.

२. वही, अध्याय १९ पृ० ४८०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(अ) **स्थावर, वनस्पति एवं पार्थिव विष**—ये जड़, पत्र, पुष्प, फल, छाल, दूध, निर्यास, रससार, कंद एवं धातु विष के रूप में दस प्रकार के हैं। कनेर, गुंची, कचनार, धतूरा, अकौवा, गोंद, कालकूटादि, कंद और संखिया इसी कोटि के विष हैं। इनका प्रभाव सात चरणों में मारक रूप ग्रहण करता है।

(ब) **जंगम या प्राणिज विष**—ये प्राणि शरीर की आँख, श्वासोच्छ्वास, दाढ़, लार, मूत्र, मल, शुक, नख, वात, पित्त, गुद, मुख, दंत शूक (डंक), शव और अस्थि के माध्यम से सोलह प्रकार से निर्गमित होते हैं। ये साँप, बंदर, पागल कुत्ता, शिशुमार, छिपकली, चूहा, गोंच, मक्खी, मच्छर, विशिष्ट-मछलियों एवं शवों में पाये जाते हैं। इनका विष दंश या स्पर्श स्थान में ४५० काल मात्रा तक रहकर अपना पूर्ण प्रभाव पूर्वोक्त सात चरणों में प्रदर्शित करता है। यहाँ काल की मात्रा की व्याख्या नहीं की गई है।

(स) **कृत्रिम विष**—यद्यपि इसके विषय में ग्रन्थ में कोई विवरण नहीं मिलता। फिर भी इसके अन्तर्गत ऐसे पदार्थों को लिया जा सकता है जो रसशाला में तैयार किये जा सकें। वर्तमान पोटैसियम सायनाइड, कार्बन मोनोक्साइड, मेथिलियम सायनाइड आदि को इस कोटि में ही रखना चाहिये। यद्यपि ये उस युग में अनुपलब्ध थे।

विष की चिकित्सा वमन, विरेचन एवं औषध के रूप में बताई गई है। विषैले जीवों के काटने पर अन्तः प्रविष्ट विष के लिये बंधन, रक्तमोक्षण, अग्निजलन या जलौकाचूषण की क्रियायें प्राथमिक रूप से बताई गई हैं।

पारद रसायन

पारद और उसके विभिन्न यौगिक और मिश्रण जीवन को स्वास्थ्य एवं आयुष्य प्रदान करते हैं। इस आधार पर भारत में रसतंत्र ही चल पड़ा था जिसमें कुछ चामत्कारिता का भी अंश था। लेकिन इस तंत्र से रसायन के विकास में बड़ी सहायता मिली है। भारत में रसायन का विकास रसतंत्र के माध्यम से ही सोलहवीं सदी तक होता रहा है। उग्रादित्य इस तंत्र की बाल्यावस्था में हुए हैं। संभवतः उन्हें नागार्जुन का रसरत्नाकर सुलभ नहीं हो सका था, इसीलिये पारद-रसायन से संबंधित उनका विवरण प्राथमिक स्तर का ही माना जायगा। नागार्जुन के अठारह संस्कारों की तुलना में पारद के आठ महासंस्कारों का ही यहाँ वर्णन हैं: स्वेदन, मर्दन, धातुमिश्रण, सम्मिश्रण, बंधन, गर्भद्रावण, रंजन एवं सारण। ये संस्कार छह क्रियाओं के माध्यम से संपन्न होते हैं - मूर्च्छन (ठोसीकरण), मारण (भस्मकरण), बंधन (यौगिकीकरण एवं सम्मिश्रण), तापन, वासन एवं कासन। पारे को गुड़ के साथ मर्दित कर मूर्च्छित किया जाता है। कैंत के फल के रस से उसका मारण होता है। रसबंधन रसशाला में किया जाता है। दोलायंत्र की सहायता से पारद में अनेक पदार्थ मिलाकर एवं घोंटकर उसे स्वेदित (अधःपातित) करते हैं और उसे बंधन-योग्य बनाते हैं। शुद्ध पारे में सुवर्णचूर्ण मिलाकर घोंटने और छानने पर मिश्ररस प्राप्त होता है। इसमें विभिन्न वर्गों के पदार्थ मिलाकर कांजी के दोलायंत्र में स्वेदित करने पर भी रस-बंध

---

१. कल्याणकारक अध्याय, २४ पृ० ६६९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राप्त होता है। पारे में ताम्र, अभ्रक एवं लौहचूर्ण आदि मिलाकर जारण (तापन) करने से भी विभिन्न रसबंध प्राप्त होते हैं। ये रस-बंध ही औषधों में काम आते हैं। मकरध्वज नामक औषध पारद, गंधक और स्वर्ण के परस्पर बंध से प्राप्त होती है।

पारद और रसायन कार्य के लिये जहाँ नागार्जुन ने २६ यंत्रों के नाम दिये हैं, वहाँ कल्याणकारक में इससे आधे यंत्रों का भी उल्लेख नहीं है। इससे पता चलता है कि उग्रादित्य पारद-रसायन एवं उपचार के वर्णन में काफी पीछे हैं जबकि वे खनिज एवं रासायनिक पदार्थों के विवरण में आगे हैं।

उपसंहार

उग्रादित्य का कल्याणकारक ग्रन्थ एक ओर जहाँ यह प्रमाणित करता प्रतीत होता है कि दक्षिण भारत में उस युग में रसायन विद्या अधिक प्रगति पर थी, वहीं यह, यह भी प्रकट करता है कि दक्षिण और पूर्वी-उत्तरी भारत में ज्ञान विद्या के संप्रासारण की गति मन्द रही है और समतुल्यता में दो-तीन सौ वर्ष का अन्तराल भी सामान्य रहा है। फिर भी, यह ग्रन्थ नागार्जुन और उत्तरवर्ती रसज्ञों के बीच एक कड़ी का काम करता है क्योंकि अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ कल्याणकारक के सौ वर्ष बाद के ही पाये जाते हैं। सर्वाधिक ग्रन्थ बारहवीं-तेरहवीं सदी के ही पाये जाते हैं। इनमें कुछ जैनाचार्य-रचित भी हैं। इस विषय पर अभी कोई विशेष कार्य नहीं हुआ है। इस बात की महती आवश्यकता है कि जैनाचार्यों द्वारा रसायन और भौतिक विज्ञानों में योगदान के इतिहास का सर्वेक्षण एवं लेखन किया जावे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org